सर्वज्ञसिद्धि

-प्रो. वीरसागर जैन

'सर्वज्ञसिद्धि' दर्शनशास्त्र का एक अत्यंत प्रमुख विषय है | प्राय: सभी दर्शनों में इस विषय पर थोड़ा-बहुत प्रकाश अवश्य डाला गया है | किन्तु इस विषय को जैसा महत्त्व और विस्तार जैन दर्शन में प्राप्त हुआ है, वैसा अन्यत्र नहीं हो सका | 'सर्वज्ञसिद्धि' जैन दर्शन का एक बहुत ही प्रधान विषय बन गया है | वहां इसे न्यायशास्त्र के द्वारा भी बारम्बार अनेकानेक हेतुओं द्वारा विस्तारपूर्वक सिद्ध किया गया है | जैन दर्शन के प्राय: सभी दार्शनिक, आध्यात्मिक और नैयायिक आचार्यों ने इस विषय को विशेष महत्त्व प्रदान किया है और उस पर विस्तारपूर्वक लेखनी चलाई है, क्योंकि उनके अनुसार यह विषय एक बहुत ही प्रयोजनभूत विषय है, मूलभूत विषय है, सभी को सर्वप्रथम अनिवार्यरूप से ज्ञातव्य है, इसके बिना अन्य विषय भी भलीभांति समझ में नहीं आ सकते | सर्वज्ञ तो धर्म का मूल है, उसके श्रद्धान-ज्ञान बिना धर्म की शुरुआत ही नहीं होती |

दरअसल इसमें एक बात यह भी है कि सर्वज्ञता आत्मा का अपना ही स्वभाव है, अतः इस विषय को समझने का अर्थ किसी अन्य व्यक्ति या वस्तु को समझना नहीं है, अपितु अपने ही आत्मस्वभाव को भलीभांति समझना है | यह आत्मज्ञान का ही एक रूप है | जो सर्वज्ञ को नहीं जानता वह वास्तव में अपने आत्मा को भी नहीं जानता |

आत्मा के ज्ञान-श्रद्धान और सर्वज्ञ के ज्ञान-श्रद्धान का अविनाभाव सम्बन्ध है, सहभाव सम्बन्ध है | जिसे आत्मा का ज्ञान-श्रद्धान होगा, उसे सर्वज्ञ का ज्ञान-श्रद्धान भी नियम से होगा ही और जिसे सर्वज्ञ का ज्ञान-श्रद्धान होगा, उसे आत्मा का ज्ञान-श्रद्धान भी नियम से होगा ही | ऐसा कदापि नहीं हो सकता कि इनमें से किसी एक का तो ज्ञान-श्रद्धान हो जाए और दूसरे का ज्ञान-श्रद्धान न हो |

यही कारण है कि जैनाचार्यों ने इस विषय (सर्वज्ञसिद्धि) को एक मूलभूत या प्रयोजनभूत विषय कहकर इसे सावधानी से समझने पर बहुत अधिक बल प्रदान किया है |

सर्वज्ञसिद्धि का यह विषय वैसे तो सभी जैन ग्रन्थों में, चारों ही अनुयोगों में, यत्र-तत्र-सर्वत्र मिल जाता है, किन्तु जितने व्यवस्थित रूप से यह विषय जैन-न्याय-ग्रन्थों में मिलता है, उतना अन्यत्र नहीं मिलता; अतः यहाँ इस विषय को जैन-न्याय-ग्रन्थों के आधार पर ही भलीभांति स्पष्ट करने का प्रयास करते हैं |

जैन-न्याय-ग्रन्थों में सर्वज्ञसिद्धि का यह विषय लगभग सभी न्याय-ग्रन्थों में अनिवार्य रूप से मिलता है | यह बात अलग है कि कहीं इसे बहुत संक्षेप में कह दिया है और कहीं इसे बहुत विस्तार से कहा है | तथा कहीं-कहीं तो स्वतंत्र रूप से ही इस विषय पर प्रकरण-ग्रन्थ का भी निर्माण कर दिया है | जैसे कि आचार्य अनंतवीर्य ने इस विषय पर दो स्वतंत्र ग्रन्थ लिख दिए हैं- लघु सर्वज्ञसिद्धि और बृहत् सर्वज्ञसिद्धि |

सर्वज्ञसिद्धि के इस विषय को स्पष्ट करने के लिए समन्तभद्र, अकलंक, विद्यानंद आदि आचार्यों ने आप्तमीमांसा, अष्टशती, अष्टसहस्री जैसे महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ भी लिखे हैं | ये ग्रन्थ सर्वज्ञसिद्धि जैसे विषय को प्रस्तुत करने के कारण ही न्याय-ग्रन्थों की सूची में परिगणित होते हैं और इस विषय को भलीभांति समझने के लिए अत्यंत उपादेय हैं |

यहाँ हम इन्हीं सबके आधार से सर्वज्ञसिद्धि के विषय को सरल-सुबोध शैली में प्रस्तुत करने का एक लघु प्रयास करते हैं | आशा है, सर्वज्ञसिद्धि जैसा गूढ़-गम्भीर विषय कुछ सरलता के साथ स्पष्ट होगा |

सर्वज्ञसिद्धि के इस विषय को जैन-न्याय-ग्रन्थों में दो भागों में विभाजित करके समझाया गया है- सामान्य सर्वज्ञसिद्धि और विशेष सर्वज्ञसिद्धि, अतः यहाँ भी उसे उसीप्रकार दो भागों में विभाजित करके प्रस्तुत करते हैं | सामान्य सर्वज्ञसिद्धि में यह सिद्ध किया जाता है कि कोई सर्वज्ञ हो सकता है, उसमें कोई बाधा नहीं है और विशेष सर्वज्ञसिद्धि में यह सिद्ध किया जाता है कि वह सर्वज्ञ अरिहंत ही है, कपिल-सुगत आदि अन्य कोई नहीं |

दरअसल, सामान्य सर्वज्ञसिद्धि और विशेष सर्वज्ञसिद्धि– ये वास्तव में सर्वज्ञसिद्धि के दो भाग नहीं हैं, अपितु दो सोपान हैं, दो स्तर हैं | पहले सामान्य सर्वज्ञसिद्धि की जाती है और उसके बाद में विशेष सर्वज्ञसिद्धि की जाती है | सामान्य सर्वज्ञसिद्धि में मात्र इतना सिद्ध किया जाता है कि कोई सर्वज्ञ हो सकता है, उसमें किसी प्रकार की कोई तकनीकी बाधा नहीं है; क्योंकि बहुत-से लोग यही नहीं मानते हैं कि कोई सर्वज्ञ हो भी सकता है| उनका मानना है कि सर्वज्ञ अर्थात् सब कुछ/ अनंत द्रव्यों और उनकी अनंतानन्त पर्यायों को जाननेवाला वास्तव में कोई हो ही नहीं सकता है, सम्भव ही नहीं है, यदि कहीं किसी ने ऐसा कहा भी है तो वह केवल कथनमात्र है, अतिशयोक्ति मात्र है, वस्तुस्थिति नहीं है | अत: पहले इस मान्यता का निवारण करने के लिए सामान्य सर्वज्ञसिद्धि की जाती है कि सर्वज्ञ हो तो सकता है, उसमें किसी तरह की कोई बाधा नहीं है | इसके बाद जब यह भलीभांति स्थापित हो जाता है कि कोई

सर्वज्ञ हो तो सकता है, उसमें कोई बाधा नहीं है, तब विशेष सर्वज्ञसिद्धि की जाती है | विशेष सर्वज्ञसिद्धि में यह सिद्ध किया जाता है कि सर्वज्ञ हो ही नहीं सकता है, है भी | तथा वह अन्य कोई नहीं, अरिहंत ही है | क्योंकि बहुत-से लोग सर्वज्ञ हो सकता है – इस बात को सिद्धांततः स्वीकार करके भी यह नहीं स्वीकार कर पाते हैं कि सर्वज्ञ वास्तव में है भी | वे यही कहते रहते हैं कि ठीक है, हो तो सकता है, उसमें सिद्धांतगत कोई बाधा नहीं है, लेकिन प्रायोगिक रूप से ऐसा कोई पुरुष नहीं है | अथवा हम निर्णयपूर्वक नहीं कह सकते हैं कि अरिहंत ही सर्वज्ञ हैं | अतः इस तरह की मान्यता का निराकरण करने के लिए विशेष सर्वज्ञसिद्धि की जाती है | दोनों प्रकार से सर्वज्ञसिद्धि करना अनिवार्य है, मात्र एक पर्याप्त नहीं है |

सामान्य सर्वज्ञसिद्धि

सामान्य सर्वज्ञसिद्धि हेतु जैनाचार्यों ने मुख्य रूप से निम्नलिखित तीन तर्क दिये हैं, जिन पर हमें बहुत ही गम्भीरता से चिन्तन करना चाहिए –

1. आत्मा सर्वज्ञ हो सकता है, क्योंकि उसका स्वभाव ज्ञान (जानना) है | स्वभाव में सीमा नहीं होती | जैसे अग्नि सबको जलाती है, पानी सबको भिगोता है, उसी प्रकार ज्ञान सबको जानता है | तथा जिस प्रकार आत्मा में ज्ञातृत्व है, उसी प्रकार जगत् के सर्व पदार्थों में ज्ञेयत्व(प्रमेयत्व) है | ऐसी स्थिति में ज्ञान यदि शुद्ध हो तो सकल ज्ञेयों को अवश्य ही जानेगा | दाहक किस दाह्य को नहीं जलाएगा ? वह तो अनिवार्यतः सबको जलाएगा ही | उसीप्रकार ज्ञायक/ज्ञाता किस ज्ञेय को नहीं जानेगा ? वह तो सबको अनिवार्यतः जानेगा ही |

   सभी पदार्थों का ज्ञेयत्व हमें स्वयं भी अनुभव में आता है | उसे प्रत्यक्ष होने की ही आवश्यकता नहीं है, उसे अनुमान से भी जाना जा सकता है, क्योंकि सभी पदार्थ अनुमेय हैं | तथा जो अनुमेय होता है, वह प्रत्यक्ष भी होता है |

   जगत में दो प्रकार के पदार्थ हैं- प्रत्यक्ष और परोक्ष | प्रत्यक्ष तो प्रत्यक्ष हैं ही, परोक्ष भी किसी न किसी के प्रत्यक्ष सिद्ध होते हैं, क्योंकि वे सभी अनुमेय हैं | (सूक्ष्मान्तरितदूरार्था प्रत्यक्षाः प्रत्यक्षाः कस्यचिद्यथा | अनुमेयत्वतोऽग्न्यादिरिति सर्वज्ञसंस्थितिः || - आप्तमीमांसा, 5)

2. सर्वज्ञता के बाधक तत्व दो हैं- अज्ञान (आवरण) और रागादि (दोष) | इनका उचित साधना द्वारा शनैः शनैः क्षय होता देखा जाता है | इससे सिद्ध होता है कि किसी के इनका पूर्ण क्षय भी हो सकता है | जिसके हो जाए वही सर्वज्ञ है | जिसप्रकार स्वर्ण की अशुद्धि ताव देते-देते अंततोगत्वा पूर्ण क्षय हो ही जाती है और स्वर्ण पूर्ण शुद्ध हो जाता है, उसीप्रकार आत्मा की अशुद्धि भी उचित साधना द्वारा अंततोगत्वा पूर्ण क्षय हो ही जाती है और आत्मा पूर्ण शुद्ध हो जाता है | पूर्ण शुद्ध आत्मा अज्ञान (आवरण) और रागादि से रहित होता है | वही सर्वज्ञ है | (दोषावरणयोर्हानिर्निःशेषास्त्यतिशायनात् | क्वचिद्यथा स्वहेतुभ्यो बहिरन्तर्मलक्षयः || -आप्तमीमांसा, 4)
3. सर्वज्ञ होने में किसी प्रकार का कोई बाधक प्रमाण नहीं मिलता | प्रत्यक्ष या अनुमान – किसी से भी सर्वज्ञ होने में किसी प्रकार की कोई बाधा सिद्ध नहीं होती |

   कोई कहता है कि प्रत्यक्ष से सर्वज्ञ नहीं दिखाई देता -यह बाधा है न ? तो जैनाचार्य उससे पूछते हैं कि सर्वज्ञ इस देश इस काल में नहीं दिखाई देते या सर्व देश सर्व काल में नहीं दिखाई देते ? यदि इस देश इस काल में नहीं दिखाई देते तो यह कोई बात नहीं हुई, यह तो हम भी मानते हैं; किन्तु यदि तू यह कहता है कि सर्वज्ञ सर्व देश सर्व काल में ही नहीं दिखाई देते तो हमें बता कि तू सर्व देश सर्व काल को देखकर कहता है या बिना देखे ? यदि बिना देखे कहता है तो तेरी बात अप्रामाणिक रही और यदि देखकर कहता है तो तू ही सर्वज्ञ सिद्ध हुआ |

   पुनश्च, वह कहता है कि अनुमान से सर्वज्ञ की सिद्धि में बाधा आती है और वह इस प्रकार है- कोई भी पुरुष सर्वज्ञ नहीं हो सकता, क्योंकि वह पुरुष है | उससे पूछते हैं कि पुरुषत्व तीन प्रकार का होता है– रागादि से अदूषित पुरुषत्व, रागादि से दूषित पुरुषत्व और पुरुषत्व सामान्य | तुम किसकी बात कर रहे हो ? यदि प्रथम की बात कर रहे हो तो तुम्हारा हेतु विरुद्ध है, क्योंकि रागादि से अदूषित पुरुषत्व सर्वज्ञता के बिना सम्भव नहीं है | यदि द्वितीय की बात कर रहे हो तो तुम्हारा हेतु सिद्धसाध्य है, क्योंकि रागादि से दूषित पुरुष को हम ही सर्वज्ञ नहीं मानते | और यदि तृतीय की बात कर रहे हो तो तुम्हारा हेतु संदिग्धविपक्षव्यावृत्ति है, क्योंकि सर्वज्ञत्व के साथ पुरुषत्व का कोई विरोध नहीं है |

इसप्रकार उक्त तर्कों से यह भलीभांति सिद्ध हो जाता है कि सर्वज्ञ होना सम्भव है, सर्वज्ञ की सत्ता अवश्य ही है, उसमें सिद्धांततः किसी प्रकार की कोई बाधा नहीं है |

विशेष सर्वज्ञसिद्धि

सामान्य सर्वज्ञसिद्धि के उपरांत विशेष सर्वज्ञसिद्धि हेतु जैनाचार्यों ने मुख्य रूप से एक ही खास बात बहुत जोर देकर कही है कि –

स त्वमेवासि निर्दोषो युक्तिशास्त्राविरोधिवाक् |
अविरोधो यदिष्टं ते प्रसिद्धेन न बाध्यते ||

-आप्तमीमांसा, 6

इसका आशय इसप्रकार है कि –

अरिहंत ही सर्वज्ञ हैं, क्योंकि वे निर्दोष हैं| कपिलादि सर्वज्ञ नहीं हैं, क्योंकि वे निर्दोष नहीं हैं, सदोष हैं |

अरिहंत निर्दोष हैं, क्योंकि उनके वचन युक्ति-शास्त्र से अबाधित हैं | कपिलादि निर्दोष नहीं हैं, क्योंकि उनके वचन युक्ति-शास्त्र से बाधित हैं |

मैं समझता हूँ कि यह बात बहुत ही ठोस है, अकाट्य है, हमें इस पर बहुत गम्भीरता से बारम्बार चिन्तन करना चाहिए | यह जैनाचार्यों की एक बहुत ही बड़ी देन है | इससे सर्वज्ञसिद्धि जैसा गूढ़-गंभीर विषय हस्तामलकवत् स्पष्ट हो गया है | सर्वज्ञता को वचनों से समझने की यह एक अद्भुत, किन्तु सफल कोशिश है | यथा-

जिसके वचन युक्ति-शास्त्र-विरोधी हैं, वह निर्दोष नहीं हो सकता, वह तो नियम से सदोष (दोषावरण-सहित) ही होगा | और जो सदोष होगा, वह सर्वज्ञ नहीं हो सकता | कपिलादि इसीलिए सर्वज्ञ नहीं हो सकते, क्योंकि उनके वचन युक्ति-शास्त्र-विरोधी हैं | तथा अरिहंत इसीलिए सर्वज्ञ हैं, क्योंकि उनके वचन युक्ति-शास्त्र-अविरोधी हैं |

अंत में, सर्वज्ञसिद्धि के इस महत्त्वपूर्ण विषय को समझकर हम सब स्वयं भी समस्त दोषावरणों से रहित होकर सर्वज्ञ हो जाएँ – इसी पवित्र भावना के साथ अपनी वाणी को विराम देता हूँ |